संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक : 12 | पृष्ठ : 16 | जुलाई 2012 | नयी दिल्ली

गैंग्स ऑफ वेब मीडिया

जैक्सन का जीवन और सभ्यता के सवाल

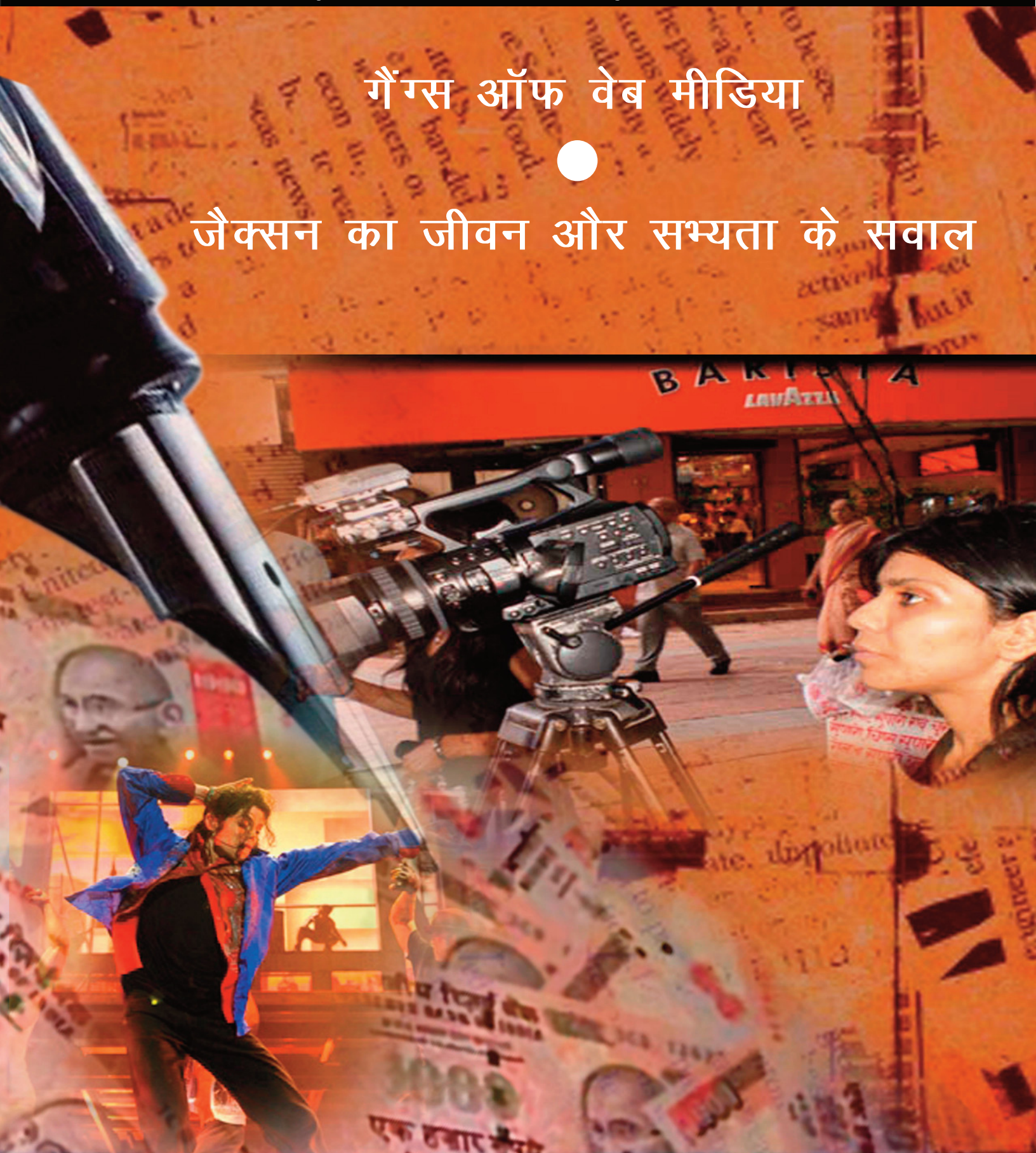

संवादसेतु

संपादक
आशुतोष

सह–संपादक
रवि शंकर

संपादक मंडल
अमल कुमार श्रीवास्तव
नेहा जैन
सूर्यप्रकाश

कार्यालय
प्रेरणा, सी–56/20,
सेक्टर–62, नोएडा

संपर्क:
0120-2400335
mail@samvadsetu.com
वेब : samvadsetu.com

अनुरोध

संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई–मेल पर अवश्य भेजें।

'संवादसेतु' मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। 'संवादसेतु' अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय 2

आवरण कथा
गैंग्स ऑफ वेब मीडिया 3

परिप्रेक्ष्य
जैक्सन का जीवन और सभ्यता के सवाल 5

साक्षात्कार
पत्रकारिता शिक्षण में भारतीय दृष्टि आवश्यक– प्रो. ओमप्रकाश सिंह 7

लेख
काम भी करो और पैसे भी दो 10

संस्मरण
पत्रकार प्रेमचंद 11

न्यू मीडिया
सोशल मीडिया के लिए जरूरी होते साइबर कानून 13

परिचर्चा
क्या यशवंत प्रकरण मीडिया के गिरते स्तर का परिचायक है? 14

शोध
टीवी चैनलों का सत्यकथाकरण खबरों के प्रसारण संदर्भ में 15

मीडिया शब्दावली 16

17–18 जुलाई की तारीखें मुंबई के लिये कष्टपूर्ण थीं। 24 घंटे के अंदर मुंबई में रहने वाली राष्ट्रीय स्तर की तीन हस्तियों ने महाप्रयाण किया। 17 जुलाई की सुबह प्रख्यात समाजवादी नेता तथा पूर्व सांसद सुश्री मृणाल गोरे ने अंतिम सांस ली। इसी दिन शाम को महाराष्ट्र के अतिरिक्त महाधिवक्ता, राज्यसभा के सांसद तथा भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष रहे श्री बाल आपटे की जीवन यात्रा पूरी हुई। 18 जुलाई को भारतीय फिल्म जगत की जानी–मानी हस्ती राजेश खन्ना नहीं रहे।

देश के सामाजिक जीवन में तीनों का ही अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान था। मृणाल गोरे का राजनीतिक जीवन बहुत लम्बा रहा। मुंबई महापालिका की सभासद से लेकर विधानसभा और संसद तक में उन्होंने प्रतिनिधित्व किया। राजनीति, विशेषकर आंदोलनों में जब गिनी–चुनी महिलाएं सामने आती थीं, मृणाल ताई ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया। स्थानीय समस्याओं के समाधान के अतिरिक्त महाराष्ट्र विधान सभा में 1986 में महिला भ्रूण हत्या पर निजी विधेयक प्रस्तुत कर इस गंभीर मसले पर देश का ध्यान आकर्षित करने तथा इसके विरुद्ध कानून बनाने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के लिये उन्हें सदैव याद किया जायेगा।

भाजपा नेता बाल आपटे कानूनविद होने के साथ ही शिक्षाविद भी थे। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद में दशकों तक सक्रिय रहे। देश में गैर–राजनैतिक छात्र आन्दोलन को संगठित और सक्रिय बनाये रखने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। खास तौर पर जब 1977 में सारे छात्र संगठन जनता पार्टी में समाहित हो गये, तब भी विद्यार्थी परिषद को दल और सत्ता की राजनीति से दूर रखने जैसा बड़ा निर्णय लेने, आपातकाल में जयप्रकाश नारायण और 1986 में बोफोर्स घोटाले के विरुद्ध विश्वनाथ प्रताप सिंह को न केवल मंच उपलब्ध कराने बल्कि आंदोलन को देशव्यापी आकार देने में अभाविप ने जो महत्वपूर्ण भूमिका निभायी उसमें श्री बाल आपटे का बड़ा योगदान था।

श्री बाल आपटे और सुश्री मृणाल गोरे, दोनों ही आपातकाल में तानाशाही का विरोध करते रहे। दोनों ने ही इसके विरुद्ध भूमिगत आंदोलन में भाग लिया। फलस्वरूप दोनों को ही जेल जाना पड़ा। श्री आपटे पर तो मीसा का काला कानून भी थोपा गया।

श्री राजेश खन्ना भारतीय फिल्म जगत में पहले सुपरस्टार थे। लगातार सफल फिल्में देने वाले खन्ना के प्रति तत्कालीन पीढ़ी की दीवानगी के किस्से मशहूर हैं। फिल्म समीक्षक जयप्रकाश चौकसे ने उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए लिखा कि– आज जाने कितनी उम्रदराज दादियां और नानियां अपने पोते–पोतियों से मुंह छिपा कर रो रही होंगी। यह सच है कि राजेश खन्ना ने एक नहीं तीन–तीन पीढ़ियों के दिलों पर राज किया है।

संवादसेतु अपने–अपने क्षेत्र के इन तीनों ही नायकों को श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए राष्ट्रीय जीवन में इनके अमूल्य योगदान का भावपूर्ण स्मरण करता है। वहीं मीडिया द्वारा राजेश खन्ना को छोड़ शेष दोनों महान आत्माओं को स्मरण करने में मुख्य धारा की मीडिया द्वारा हुई गंभीर चूक पर खेद भी प्रकट करता है। वस्तुतः मीडिया की यह जिम्मेदारी है कि अपने आपको संतुलित बनाये रखे। किसी एक व्यक्ति अथवा घटना को बहुत अधिक समय और स्थान देना तथा किसी अन्य को नजरअंदाज करना, यह पत्रकारीय मूल्यों के विपरीत है। इस नाते उपरोक्त दोनों व्यक्तित्वों को समाचारों में अत्यंत सीमित स्थान देकर मीडिया ने उनके योगदान को नकारने का जो प्रयास किया है वह अक्षम्य है।

कुछ लोग यह तर्क दे सकते हैं कि राजेश खन्ना की लोकप्रियता के कारण उनको अधिक स्थान मिला, यह एक सीमा तक चल सकता है किन्तु इसके आधार पर अन्य किसी के जीवनभर के योगदान को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिये। खास तौर पर तब, जब 17 जुलाई की शाम को सुश्री गोरे तथा श्री आपटे का निधन हो चुका था, अधिकांश चैनलों पर दोनों के निधन का समाचार नीचे पट्टी पर चल रहा था वहीं विस्तृत खबरों में राजेश खन्ना की बीमारी की चर्चा थी। गंभीर कहे जाने वाले चैनल और एंकर भी इसमें अपवाद नहीं थे।

यह वह स्थिति है जब मीडिया साबित करता है कि जन की संवेदना से वह दूर हो चुका है तथा लोक को प्रभावित करने वाले लोग और मुद्दे उसकी प्राथमिकता नहीं रहे। यही वह चलन है जो उसे पत्रकारिता से मीडिया बना देता है। पत्रकार के लिये यह पैमाना नहीं हो सकता कि पाठक या दर्शक क्या पढ़ना और देखना चाहता है। पत्रकार का पैमाना होता है खबर का मूल्य। यदि समाचार तत्व और समाचार मूल्य की समझ बरकरार रहती तो यह कदापि संभव नहीं था कि अखबारों में और स्क्रीन पर राजेश खन्ना इस कदर हावी रहते एवं गोरे और आपटे की विदायी गुमनामी में डूब जाती।

भवदीय
संपादक

गैंग्स ऑफ वेब मीडिया

ऋतेश पाठक

पिछले दिनों एक ऑनलाइन मीडिया पोर्टल भड़ास के संचालक की गिरफ्तारी के बाद मीडिया के कुछ धड़ों में आपसी प्रतिद्वंद्विता का घटिया स्तर सामने आया और खेमों में बंटे मीडियाकर्मियों के बीच एक दूसरे के प्रति कानाफूसी का दौर तेज हो गया। यशवंत की गिरफ्तारी के बाद जिस तरह से बड़े अखबारों में खबरें आयी और फिर वेब पर अपने–अपने तरीके से लोग यशवंत के पक्ष और विपक्ष में भड़ास निकालते देखे गए, उससे मीडिया की खेमेबंदी और गुटबाजी ही उजागर हुई।

कुछ लोग यशवंत की गिरफ्तारी को सिर्फ एक पत्रकार की गिरफ्तारी से जोड़ कर देखने की बजाय इसे मीडिया वर्सेज मीडिया की तरह देख रहे थे। यशवंत की गिरफ्तारी के तत्काल बाद जिस तरह से देश के बड़े अखबारों ने चार कॉलम की खबर चलाई और जिस तरह से वेब के भीतर और वेब के बाहर मौजूद पत्रकारों ने अपनी–अपनी भड़ास निकालने में सक्रियता दिखाई, वह आश्चर्यजनक है। उल्लेखनीय है कि यशवंत के खिलाफ एफआईआर आइबीएन–7 की साक्षी जोशी और उनके पति इंडिया टीवी के विनोद कापड़ी द्वारा कराई गयी है। सेक्टर 48 निवासी इंडिया टीवी के संपादक विनोद कापड़ी ने कोतवाली फेज दो थाने में वेबसाइट संचालक यशवंत के खिलाफ रंगदारी का मामला दर्ज कराया था। वहीं प्रबंध संपादक की पत्नी ने यशवंत के खिलाफ कोतवाली सेक्टर 49 में अश्लील एसएमएस भेजने का मामला दर्ज कराया था। दोनों कोतवाली की संयुक्त टीम ने यशवंत को सेक्टर 63 से शनिवार की शाम गिरफ्तार किया।

इस घटना में आरोपित की वास्तविक भूमिका और आरोपों के सच–झूठ से ज्यादा जो बात प्रमुखता से उभरी वह वैकल्पिक मीडिया के लिए आत्मावलोकन की जरूरत पर बल देती है और मीडिया के इस नये अवतार के अंदरूनी बिखराव को भी उजागर करती है। मीडिया के अंदर लॉबिंग कोई नयी बात नहीं है और ऐसा पहली बार नहीं हुआ है कि किसी एक पक्ष को कमजोर करने के उद्देश्य से घिनौने हथकंडे अपनाये जाएं लेकिन वास्तव में वेब मीडिया के सक्रिय खेमों को देखें तो शुरुआत से ही यह ऐसे हथकंडों में फंसा रहा है और उसका खामियाजा अपने विकास में अवरोध के रूप में भुगतता रहा है। आज प्रमुख सवाल यह है कि क्या वेब पत्रकारों ने अपनी स्थिति इतनी कमजोर कर ली है कि जो चाहे धक्का देकर चला जाए? स्थिति तो यही दिखती है कि कई खेमों में बंटे वेब मीडिया के पत्रकारों ने अब या तो खुद को मीडिया का सबसे कमजोर खम्भा मान लिया है या फिर वे ऐसी स्थिति से बचने की कोशिश करने लगे हैं। इसका एक बड़ा कारण वे स्वयं ही हैं।

दरअसल वर्डप्रेस और ब्लॉगस्पॉट के जमाने से लेकर आज स्वतंत्र वेबसाइटों के जमाने तक वेबमीडिया के जो नामचीन खेमे काम कर रहे हैं, उनमें से अधिकांश को लोकप्रियता उनकी घटिया और भड़काऊ भाषा तथा ऐसे ही तथ्यों के इस्तेमाल की वजह से मिली। प्रमाण के लिए इन वेबसाइटों के शुरुआती दिनों में की गयी पोस्ट देखी जा सकती है। भाषा का अनुशासन तो छोड़िए, सामान्य सामाजिक मर्यादा की भी किस तरह धज्जियां उड़ीं, यह सब उन ब्लॉगों के आर्काइव में अब भी देखा जा सकता है। जाहिर है, जब आगाज ही ऐसा हो अंजाम कैसा होगा। यद्यपि भारत का वेब मीडिया अभी अपने शैशव में ही है तथापि उसके कर्णधारों की इन हरकतों ने उसके भविष्य की रूपरेखा पर तमाम सवाल लाद दिये हैं।

जिस घटिया प्रतिद्वंद्विता का नतीजा आज कोर्ट कचहरी के चक्करों के रूप दिख रहा है, (चाहे यह सब साजिश के तहत हो रहा हो), उसकी बानगी भड़ास और ऐसे तमाम ब्लॉगों की कुछेक पोस्टों और ज्यादातर टिप्पणियों में प्रयुक्त भाषा में ही दिख रही थी। यह सच है कि भड़ास को छोड़कर अन्य ब्लॉगों की पोस्ट भाषिक तौर पर अपेक्षाकृत ज्यादा अनुशासित होती थी लेकिन टिप्पणियों को लेकर सबकी स्थिति एक जैसी थी और ऐसा लगता था कि या तो संचालकों को मॉडरेशन का विकल्प मालूम नहीं है या वे इसके इस्तेमाल की ओर सभ्य, संयत भाषा के प्रकाशन की जरूरत नहीं समझते थे। ज्यादातर टिप्पणियों और कुछ पोस्टों में अपशब्दों का प्रयोग जिस स्तर पर होता था और सड़क छाप भी नहीं, गली छाप लहजे में जो बातचीत सामने आती थी, वह कहीं से भी रचनात्मक चर्चा के लायक नहीं बल्कि आपसी झगड़े के लायक माहौल तैयार करती रही थी। इसी भाषिक अनुशासनहीनता की परिणिति एक ब्लॉग पोस्ट के रूप में

दिखी जिसका शीर्षक था ''सावधान मां–बहनें भी ब्लॉग पढ़ती हैं।''

भड़ास जैसी वेबसाइटों के लक्षित पाठकसमूह ने इस सस्ती लोकप्रियता वाली भाषा के साथ आ रही सतही सामग्री को और भी लोकप्रिय किया। इन वेबसाइटों की शुरुआत ही मीडिया की अंदरूनी खबरों को सार्वजनिक करने के लिए की गयी लेकिन मीडिया की कार्यशैली जनित हताशा ने असीम संभावना वाले इन मंचों को तू–तू मैं–मैं के मचान में बदलकर रख दिया। चूंकि चर्चा का विषय उन पाठकों और टिप्पणीकारों से जुड़ा होता था, इसलिए उनकी दिलचस्पी इनमें ज्यादा बढ़ी और संचालकों, मॉडरेटरों को हीरो जैसा दर्जा मिलने लगा जबकि दूसरी ओर तमाम तकनीकी विशेषज्ञ और गंभीर विषयों पर बात करने वाले ब्लॉगर बिना लोकप्रियता की परवाह किये चुपचाप अपना काम करते रहे और आज भी कर रहे हैं। लोकप्रियता की इस गलाकाट होड़ में आग में घी का काम किया ब्लॉगस्पॉट की मास्टर कंपनी गूगल के विज्ञापनमूलक उत्पाद एडसेंस ने।

एडसेंस हिन्दी ब्लागरों के लिए ऐसे आया था जैसे प्यासे पपीहे को स्वाति की बूंदें मिल गयी हों। एडसेंस ने उस शून्य को भरने की कोशिश की जो ब्लॉगरों के लिए एक आर्थिक आधार के अभाव में पैदा हुई थी। एडसेंस अपने प्रति विज्ञापन की हिट और वेबसाइट पर हुए कुल हिट के आधार पर ब्लॉग संचालकों को भुगतान करने का दावा करता था। वेबसाइट या ब्लॉग की कुल हिट के हिसाब से कुछ अन्य विज्ञापन मिलने भी इस दौर में शुरु हो रहे थे। ऐसे में ज्यादा से ज्यादा हिट के लिए ज्यादा से ज्यादा अभद्र और अश्लील भाषा व विषयवस्तु का प्रयोग कुछ ब्लॉगरों की पहचान ही बन गयी। इन ब्लॉगों के पाठक और लेखक कमोबेश एक ही बिरादरी के थे और यह बिरादरी है हिन्दी मीडिया की अराजक व्यवस्था से कुंठित पत्रकारों की। इनमें कुछ बहुत ही विद्वान और सुयोग्य पत्रकार भी हैं जिन्हें मीडिया की व्यवस्था ने हताशा दी और कुछ नौसिखिए तथा अधकचरी जानकारी वाले युवा जिनके लिए यह परनिंदा और आत्मप्रवंचना का सबसे मुफीद मंच साबित हो रहा था। ज्यादातर ब्लॉगों के संचालक किसी न किसी प्रतिष्ठित घरानों से जुड़े थे या कॉलेजों से निकले ऐसे छात्र मीडिया में घुसने का इंतजार कर रहे थे। कुंठा और हताशा का स्तर एक सा होने से उन्हें लगने लगा कि वे वास्तव में ही मीडिया के तारणहार हैं और रातों–रात क्रांति ला देंगे।

जैसे–जैसे ये ब्लॉग ब्लॉगस्पॉट और वर्डप्रेस की छाया से बाहर आये और उनमें व्यावसायिक समझ विकसित हुई और एक आभासी ढांचा दिखने लगा, ब्लॉगों की विषयवस्तु में अपेक्षाकृत सुधार होने लगा। हालांकि इसके बाद भी मार्केटिंग उनके लिए एक समस्या थी और वह आज भी है। हिंदी वेबमीडिया के प्रति विज्ञापनदाताओं का रुझान अब भी कम है और मार्केटिंग की स्वाभाविक प्रक्रिया के अनुसार ही यहां भी ब्रांडिंग के अपने मायने हैं। ऐसे में वेबसाइट या पोर्टल का रूप धारण किये ब्लॉगों को विज्ञापन के लिए अपने उत्पाद के अनुरूप विज्ञापनदाता चाहिए थे। इस सिलसिले में मीडिया प्रशिक्षण संस्थानों से लेकर प्रकाशन/प्रसारण घरानों तक के विज्ञापन इन वेब पृष्ठों पर तैरने लगे। हितों के टकराव का मामला जैसे अन्य व्यापारों में और खासकर मीडिया कारोबार में सर चढ़कर बोलता है, वैसे ही यहां भी बोलने लगा। हितों के टकराव की इसी स्थिति से ब्लॉग संचालकों पर किसी खास संस्था के प्रति राग–अनुराग से प्रेरित होने, अवैध वसूली, पेड न्यूज लगाने आदि के आरोप लगे और यह सब कोई नयी बात नहीं थी क्योंकि प्रिंट और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के भी सबसे बड़े संस्थानों पर ये आरोप लगते रहे हैं और कई बार सच भी प्रतीत हुए हैं। हितों के टकराव या दूसरे शब्दों में कहें तो हितों के पोषण का उपकरण बने ये पोर्टल अब मीडिया के उन धड़ों के हथियार का रूप भी लेने लगे जिनकी आपसी दुश्मनी काफी पुरानी है। इस कारण मीडिया की परंपरागत खेमेबाजी और अन्य कमजोरियां मानो जेरॉक्स होकर वेब मीडिया में आ पहुंची। भड़ास के संचालक की गिरफ्तारी के बाद कई खेमों के नायकों ने उनके समर्थन में एकजुटता दिखाने की कोशिश की लेकिन जल्द ही कुछ खेमों ने इस मौके को खुद को चमकाने के लिए इस्तेमाल करने की कोशिश शुरु कर दी। यह जानते हुए भी कि उनकी दिशाहीनता ही उनके विकास का सबसे बड़ा अवरोधक है, एक और दिशाहीन अभियान में कई खेमे जुट गये।

दरअसल, यह खेमेबंदी ब्लॉगस्पॉट और वर्डप्रेस के जमाने में भी मजबूती से मौजूद थी और कई ब्लॉग एग्रीगेटरों के उत्थान और पतन की कहानियों पर गौर करने से भी इसका पता चल सकता है। नारद, ब्लॉगवाणी और चिट्ठाजगत जैसे एग्रीगेटर वर्चुअल ब्लॉगर सम्मेलन कराते रहे लेकिन इनमें से अधिकांश पर किसी खास विचारधारा से प्रभावित होने और उसका प्रचार प्रसार करने के आरोप लगते रहे। इस वजह से कुछ ने बहुत जल्दी दम तोड़ा तो कुछ देर तक संघर्ष कर घुटने टेक गये। यह सच है कि विचाराधारा प्रेम ही उनके पतन का एकमात्र कारक नहीं हो सकता है लेकिन इसके कारण बने माहौल ने उनके विकास में बड़ा अवरोध खड़ा किया। इस दौर में ब्लॉग खातों को हैक करने और ब्लॉक करवाने जैसे हथकंडे अपनाने की भी कोशिश हुई और इससे प्रिंट मीडिया की गलाकाट प्रतियोगिता का वह दौर आता दिखा जब मुंबई में नवभारत टाइम्स की छपी छपायी प्रतियों को समुद्र में फिंकवाने या जलाने की कोशिश हुई या पटना में गैर–व्यावसायिक कारकों के प्रभाव में नवभारत टाइम्स, आर्यावर्त तथा प्रभात खबर जैसे दमदार अखबारों को अपना प्रकाशन बंद करना पड़ा था।

ऐसा लगता है कि बाजार के प्रभुत्व के कारण मुख्यधारा की मीडिया में आये बदलावों को अस्वीकार करने की मुद्रा में जिस सोशल मीडिया ने अपना आगाज किया था वह तिरोहित हो चुका है। कारण स्पष्ट है। सोशल मीडिया के कर्णधार अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की एक नयी दुनियां रचने के लिये कटिबद्ध नहीं है। उनकी प्रतियोगिता भी मुख्य धारा के उन पत्रों और पत्रकारों से है जो बाजार की कठपुतली बनकर मगन हैं। सोशल मीडिया के बाईपास पर वे अपनी गाड़ी दौड़ाकर मुख्य धारा की अघायी हुई मीडिया से आगे निकल जाना चाहते हैं जहां बाजार विस्तार का अगला चरण उनके स्वागत को खड़ा हो।

जब इन खरगोशों को पता लगता है कि बाईपास पर कुलांचे मरने के बावजूद वे कछुए से पीछे ही हैं तो वे हमलावर हो उठते हैं। चालू प्रकरण में अगर कुछ नया हुआ है तो यह कि कछुए ने भी पलटवार शुरू कर दिया है। यह विवाद कितनी दूर तक जायेगा और आगे चलकर क्या रूप लेगा, यह देखना दिलचस्प होगा। ■

जैक्सन का जीवन और सभ्यता के सवाल

जयप्रकाश सिंह

25 जून 2009 को पॉप संगीत की दुनिया में किवदंती बन माईकल जैक्सन का निधन हो गया था। उनकी जिंदगी की तरह ही उनकी मौत भी रहस्यपूर्ण रही और मीडिया की सुर्खियों का हिस्सा बनी। जैक्सन पॉप संगीत की दुनिया के बादशाह ही नहीं थे, वे वर्तमान उपभोक्तावादी सभ्यता के लिए 'आदर्श प्रतीक' भी थे। बाजारु जीवन दर्शन और मूल्यों पर आधारित वर्तमान सभ्यता के विश्लेषण के लिए, उसकी खूबी एवं खामियों को जानने के लिए जैक्सन के जीवन और उनकी जीवन–शैली को 'केस स्टडी' के रूप में चुना जा सकता है।

माईकल जैक्सन को उस जीवन–दर्शन और जीवनशैली का साक्षात उदाहरण माना जा सकता है, जिनको 'मीडिया–माकेट नेक्सस' वैश्वीकरण के नाम पर पूरी दुनिया में आरोपित करने के लिए सतत प्रयत्नशील है। बाजार और संचार द्वारा गढ़े गए तमाम सुख एवं विकास के मानकों को जैक्सन ने अपने जीवन में स्पर्श किया। उन्होंने लोकप्रियता की उन ऊंचाईयों को छुआ जो किसी के लिए ईर्ष्या का विषय बन सकती हैं। विज्ञापनों में ही सम्भव दिखने वाली लोकप्रियता से आगे निकल गए थे जैक्सन। उनकी थिरकन पर झूमने वाले पूरी दुनिया में मिल सकते हैं। एक समय वह अकूत सम्पत्ति के मालिक थे। संक्षेप में कहें तो माईकल जैक्सन के पास वह सब कुछ था जिसे आज की व्यवस्था एक जीवन की सफलता और सार्थकता के पैमाने के रूप में आम आदमियों के सामने परोसती है।

दरअसल, मीडिया–मार्केट नेक्सस उत्पादों के संग्रह और उनके प्रदर्शन को आज की जीवनशैली में 'चरम–मूल्य' के रूप में स्थापित करने का प्रयास कर रही है। बाजारू प्राथमिकता में खरीददारी का सबसे ऊपर होना स्वाभाविक भी है। खरीददारी की उत्तेजना पैदा करने के लिए लोगों में दिखावे की संस्कृति रोपी जाती है। जैक्सन के जीवन में खरीददारी और दिखावे का जबरदस्त संयोग देखा जा सकता है। प्रदर्शन प्रभाव पैदा करने के लिए जैक्सन ने अपने पूरे शरीर को प्रयोगशाला बना दिया था। बीसियों से अधिक बार उन्होंने नाक की सर्जरी करायी थी। उनके लिंग–प्रत्यारोपण के किस्से भी काफी चर्चित रहे। प्रदर्शन प्रभाव पैदा करने के लिए माईकल जैक्सन कितने संसाधनों का प्रयोग करते थे इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 1996 में मुम्बई में हुए शो के लिए जैक्सन का सामान तीन रूसी मालवाहक पोतों के जरिए मुम्बई पहुंचा था। शौक का आलम यह था कि उन्होंने अपना एक चिड़ियाघर ही बसा डाला। एक द्वीपसमूह की खरीददारी कर डाली। हालांकि कुछ लोग

कहते हैं कि जैक्सन के दिखावे और खरीददारी का सम्बंध उनकी कालीत्वचा और उससे जुड़ी हीनता–ग्रंथि से अधिक है। लेकिन इस तर्क को यह कहकर खारिज किया जा सकता है कि बाजार और संचार के गठजोड़ के बिना कालेपन से जुड़े हीनता के क्षणिक भाव को स्थायी भाव में नहीं बदला जा सकता।

लेकिन क्या वास्तव में जैक्सन एक खुशहाल जीवन जी सके? क्या जैक्सन के लोकप्रिय जीवन और लक–दक भरी जीवनशैली के स्याहपक्षों और दुःखद कराह को अनदेखा किया जा सकता है। जैक्सन की दर्दनाक मौत कुछ सवाल छोड़ गयी है। ये साधारण सवाल नहीं है। आज की पूरी सभ्यता इन सवालों से जूझ रही है और इनका उत्तर पाने को छटपटा रही है।

जैक्सन की मौत को लेकर जो खबर सामने आयी उसके मुताबिक जैक्सन के ऊपर लगभग 8 हजार करोड़ रुपए का कर्ज था। इस कर्ज ने ही जैक्सन को 'कमबैक कन्सर्ट' पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य कर दिया। हालांकि उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति उन्हें

किसी भी शो की तैयारी की अनुमति नहीं देती थी। जैक्सन की पोस्टमार्टम रिपोर्ट के मुताबिक उनका शरीर कंकाल का ढांचा मात्र रह गया था और उनकी मौत के वक्त उनके आंतो में दर्द निवारक गोलियां ही थी। एक अन्य रिपोर्ट के मुताबिक जैक्सन प्रतिमाह 20 लाख से अधिक रूपए दवाईयों पर व्यय करते थे। उनका स्वास्थ्य इतना बिगड़ चुका था कि उन्हें ऑक्सीजन के टेंटों का सहारा लेना पड़ता था। जैक्सन एल्फा –1 एंटीट्राईप्सिन नामक गंभीर बीमारी से पीड़ित थे। इस बीमारी में पूरे शरीर में फेफड़ों को सुरक्षा प्रदान करने वाली प्रोटीनों की संख्या तेजी से घटने लगती है।

सवाल यह है कि एक समय संगीत के क्षेत्र में विश्व के सर्वाधिक अमीर जैक्सन कर्जे के इतने बड़े कुचक्र में कैसे फंस गए। क्या ऐसी जीवनशैली को मान्यता दी जा सकती है जिसमें चोटी पर बैठा व्यक्ति भी कर्ज के कुचक्र का शिकार हो जाए, भोजन के बजाए दर्दनिवारक गोलियों का आहार ले। क्या उस बाजारु नियम को सामाजिक नियम में तब्दील किया जा सकता है जो अपने कर्ज वसूली के लिए किसी की जान लेने में न हिचके। ये सवाल व्यक्तिगत नहीं हैं, साभ्यतिक हैं। वैश्विक मंदी से लेकर ग्लोबल वार्मिंग तक की ऐसी समस्त समस्याओं, जिनका सामना हमारी सभ्यता कर रही है, का जुड़ाव इन सवालों से है। ऐसा नहीं है कि इन प्रश्नों को जैक्सन को पैदा करने वाली पश्चिमी सभ्यता महसूस नहीं कर रही है। पश्चिमी दुनिया इन प्रश्नों की गम्भीरता और उनके समाधान की अनिवार्यता से वाकिफ है। लेकिन आदिम मानव प्रवृत्तियों के रुपांतरण और उसकी अभिव्यक्ति में सहज तथा सामान्य बोध के समावेश की कला से वाकिफ न होने के कारण पश्चिम कोई सार्थक समाधान नहीं ढूंढ पा रहा है। प्रकृति तथा समाज के प्रति अपने सीमित दृष्टिकोण के कारण भी पश्चिम के समाधान ढूंढने का रास्ता और दुर्गम हो जाता है।

आखिरकार इन प्रश्नों का उत्तर भी हमको माईकल जैक्सन के जीवन का आखिरी पड़ाव दे जाता है। जैक्सन अपने जीवन के अंतिम दिनों में उपनिषदों के अद्वैतवाद से अपनी सर्जनात्मक–ऊर्जा खींचने वाले भारतीय कवि रविन्द्रनाथ टैगोर का अध्ययन कर रहे थे। रविन्द्रनाथ को पढ़कर जैक्सन पर्यावरण के विषय पर कुछ कविताएं लिखने और स्टेज शो करने की योजना बना रहे थे। जलवायु परिवर्तन की भयावह समस्या के प्रति आमजन को जागरुक करने के लिए वह योगदान देना चाहते थे।

आखिर वह कौन सा तत्व है जो माईकल जैक्सन का झुकाव भारत की तरफ कर रहा था? भारतीयता में निहित समग्रता और संतुलन की दृष्टि ही वह तत्व है जो जैक्सन को आकर्षित कर रही थी। इससे पूर्व भी यह दृष्टि पश्चिमी चिंतकों को आकर्षित करती रही है। मानव प्रकृति की समग्र समझ तथा आदिम प्रवृत्तियों का रूपांतरण कर उनका उर्ध्वगमन करने वाला भारतीय जीवनदर्शन एवं जीवनशैली पश्चिमी विचारकों को समय–समय पर आकर्षित करती रही है। भारतीय जीवनदर्शन व जीवनशैली का आधार व्यापक है। वैदिक ऋचाओं की उदात्त अभिव्यक्तियां, औपनिषदिक प्रश्नोत्तर में निहित व्यापक आध्यात्मिक चिंतन तथा षड्दर्शन वह मूलतत्व हैं जिनसे भारतीय जनमानस को जीवनरस मिलता है। समाज सुधारकों और प्रकाण्ड विद्वानों की मनीषा ने इसको अधिक सुगठित बनाए रखने कालप्रवाह के साथ प्रासंगिक बनाए रखने वाले अनेक आयाम जोड़े हैं। इसके कारण भारतीय जीवनशैली और जीवनदर्शन में सभी मानवीय प्रवृत्तियों को स्वीकार्यता प्रदान की गयी है। अर्थ और काम के प्रति निषेध भाव नहीं है। परन्तु इनकी सेवन और अभिव्यक्ति में धर्माधारित संतुलन की बात जरूर कही गयी है। पश्चिम अभी उपभोग को चरममूल्य मानने वाली जीवनशैली को अपनाए हुए है इसलिए वहां सुख एवं समृद्धि का संतुलन नही सध पा रहा है ।

एजेंडा सेट करना मीडिया का काम माना जाता है। दुर्भाग्य से, मीडिया बाजारु मूल्यों को नैतिक मूल्यों के रूप में स्थापित करने के एजेंडे पर काम कर रहा है। बाजारु मूल्यों को नैतिक मूल्यों के रूप में स्थापित करने की प्रक्रिया पूरी दुनिया में एक भीषण सांस्कृतिक संहार को जन्म दे रही है। इसलिए इस प्रक्रिया पर समग्र चिंतन किया जाना मानव और मानवता दोनो के लिए आवश्यक है। चिंतन की यह प्रक्रिया जैक्सन के जरिए शुरु हो सकती है क्योंकि जैक्सन का जीवन और उनकी मौत बाजार के साथ संचार जगत को अपने मूल्यों के प्रति आत्मावलोकन का अवसर प्रदान करती है। ■

पत्रकारिता शिक्षण में भारतीय दृष्टि आवश्यक– प्रो. ओमप्रकाश सिंह

पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रोफेशनल कोर्स की बाढ़ सी आ गई है जिसने विद्यार्थियों को पत्रकार की डिग्री दी है, किंतु व्यावहारिक पत्रकारिता जगत में उनको आंशिक सफलता ही मिल पाती है। इसके प्रमुख कारणों एवं बदलाव की आवश्यकता पर हमने पत्रकारिता एवं पत्रकारिता शिक्षण से जुड़े प्रो. ओमप्रकाश सिंह से विस्तृत बातचीत की। प्रस्तुत हैं उनसे बातचीत के मुख्य अंशः

पत्रकारिता के क्षेत्र में आपका आगमन कब और कैसे हुआ?

आपातकाल का अंतिम दौर था जिसके बाद ही जनता पार्टी की सरकार आई। मैं उस वक्त इंटर का विद्यार्थी था और मेरा रूझान सामाजिक था। साथियों के साथ हमने श्यामपट् पर आपातकाल के विरोध में लिखने की योजना बनाई और लिखा भी। आपातकाल समाप्त होने पर चुनाव की घोषणा हुई और जनता पार्टी की सरकार बनी। इसके बाद सामाजिक विज्ञान संकाय बीएचयू में मैंने प्रवेश लिया। उस दौरान पत्रकारिता विभाग कला संकाय के अंतर्गत ही आता था। बीएचयू में स्थित पत्रकारिता विभाग में टेलीप्रिंटर चलता था। उत्सुकता से मैं वहां जाकर डाक देखने लगा जिसमें ताजा समाचार मिलते थे। फिर मैं वहां नियमित समाचार पढ़ने के लिए जाने लगा। मेरी रूचि को देखकर वहां मौजूद वरिष्ठ पत्रकार चन्द्रकुमार जी ने पूछा क्या बात है आप रोज आते हैं। मैंने कहा जो कल छपेगा वह आपके यहां आज ही आ जाता है। उन्होंने कहा हां समाचार यहीं से जाता है। उसके बाद यह क्रम काफी दिनों तक चलता रहा। उसके बाद मैंने बीएचयू से बी.ए पत्रकारिता की जिसके बाद मैं हिंदुस्थान समाचार के लिए पत्रकारिता करने लगा। उसी दौरान बीएचयू के तत्कालीन कुलपति इकबाल नारायण जी के कहने पर मैंने एम.जे किया। हिंदुस्थान समाचार के बंद होने के बाद में पत्रकारिता शिक्षण की ओर मेरा रूझान बढ़ा। पीएचडी के बाद मैंने शिक्षण कार्य को प्रारंभ किया।

आपका शोध का विषय क्या रहा ?

मेरा शोध विषय संचार माध्यमों का प्रभाव था। जब मैंने एम.जे किया तो संचार माध्यमों के प्रभाव विषय पर कोई पुस्तक नहीं थी इसलिए मैंने इसी विषय को पीएचडी के लिए चुना। मैंने अपने शोध कार्य में मुख्यतः दो विषयों पर कार्य किया संचार माध्यमों का सिद्धांत एवं समाचार माध्यमों का भारतीय सिद्धांत।

पत्रकारिता के गिरते स्तर के लिए आप प्रोफेशनल कोर्स को जिम्मेदार मानते हैं या व्यावहारिक पत्रकारिता को?

समाज का ऐसा कौन सा क्षेत्र है जहां गिरावट नहीं है। पत्रकारिता में यह दिखाई पड़ रहा है, अन्य क्षेत्रों में नहीं दिख रहा। यह गिरावट अर्थशास्त्र जैसे क्षेत्रों में भी है, अर्थशास्त्र के विषय पर कुछ दिनों पूर्व मेरी कई अर्थशास्त्रियों से बात हुई। उन्होंने यह स्वीकारा कि अर्थशास्त्र अब सिद्धांतों पर नहीं बल्कि सट्टा बाजार के आधार पर चलता है। पत्रकारिता के क्षेत्र में गिरावट का प्रमुख कारण इस क्षेत्र में भीड़ का आना भी है। पत्रकारिता में शिक्षण संस्थानों में भी दो वर्ग उभरकर सामने आए हैं। महानगरों में स्थापित पत्रकारिता संस्थान इलैक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रशिक्षण दे रहे हैं। वहीं प्रिंट मीडिया को ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित पत्रकारिता संस्थानों के भरोसे छोड़ दिया गया है। इसका प्रमुख कारण यह भी है कि अधिकतर संस्थान 6 टीयर सिस्टम के मानदंडों पर खरा नहीं उतर पा रहे हैं। यूजीसी के अनुसार एक प्रोफेसर, दो रीडर और तीन लेक्चरर का होना अनिवार्य है किंतु, देश के दस प्रतिशत पत्रकारिता संस्थान भी इस मानदंड को पूरा नहीं कर पा रहे हैं। वहीं नई पीढ़ी भी शॉर्टकट अपनाने लगी है, भाषा पर पकड़ कमजोर है। पत्रकारिता के गिरते स्तर के लिए शिक्षण संस्थान एवं समाज दोनों ही समान रूप से जिम्मेदार हैं।

समाचार संकलन और प्रस्तुतिकरण में बढ़ती खाई को किस प्रकार पाटा जा सकता है?

मीडिया में बदलाव आया है, टेलीप्रिंटर के दौर से आगे निकलकर मीडिया ई–मेल के दौर में पहुंच चुका है। पहले इलैक्ट्रॉनिक मीडिया प्रशिक्षण के लिए फिल्म आर्काइव पुणे जाना ही विकल्प था। वहीं आज एक छोटे से उपकरण में ही फिल्मांकन से लेकर संपादन तक का कार्य हो जाता है। इंटरनेट ने समाचार संकलन को आसान कर दिया है। अधिकतर समाचार इंटरनेट पर ही उपलब्ध हैं अथवा हो जाते हैं। ऐसे में रिपोर्टर किस बीट को कवर करने के लिए फील्ड में जाए यह तय करना होगा।

आपको ऐसा नहीं लगता कि प्रतिस्पर्द्धा के कारण मानवीय मूल्यों का क्षरण हो रहा है?

ऐसा है, लेकिन दर्शकों एवं पाठकों के समक्ष विकल्प भी मौजूद हैं। मान

लीजिए प्रिंस के गड्ढे में गिरने को किसी चैनल ने अपनी प्राइम खबर बनाया, ऐसे में दर्शक यदि उस खबर को नहीं देखना चाहता तो दूसरे चैनल का रूख करेगा। इसके अलावा प्रतिस्पर्द्धा का एक सकारात्मक पहलू भी है। पहले जहां कुछ पत्रकार मिलकर किसी खबर को दबा देते थे आज प्रतिस्पर्द्धा के कारण कोई भी खबर दब नहीं पाती है। यह प्रतिस्पर्द्धा के कारण ही संभव हुआ है। मीडिया में कुछ नकारात्मक खबरों को स्थान दिया जाता है यह बात सही है किंतु, मीडिया ने ही टूजी एवं आदर्श सोसायटी जैसे घोटालों का पर्दाफाश भी किया है।

ऐसा नहीं लगता कि दर्शकों में जिज्ञासा उत्पन्न करके खबरों को प्लांट किया जा रहा है?

जिज्ञासा मनोरंजन में पैदा की जा सकती है लेकिन खबर में नहीं। जादू–टोना और मनोरंजन में जिज्ञासा पैदा की जा सकती है फिल्म में भी जिज्ञासा पैदा की जाती है। दर्शक तीन घंटे जिज्ञासा से फिल्म देखता है। वहीं समाचार तभी देखा जाता है जब उसमें तत्व हो। समाचार चैनल देखने के लिए दर्शक बाध्य नहीं हैं। वह दूसरे चैनल का रूख कर लेगा। लेकिन यह बात भी सही है कि मीडिया महत्व के समाचार केवल प्राइम टाइम में ही दिखा सकता है।

मीडिया के क्षेत्र में नए आने वाले पत्रकारों को विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके क्या कारण हैं, व्यावहारिक प्रशिक्षण में कमी अथवा पाठयक्रम में जानकारी का अभाव?

इसके लिए पाठयक्रम को पूर्णतया जिम्मेदार ठहराना ठीक नहीं। प्रोफेशनल कोर्स में दाखिला लेने वाले विद्यार्थी कक्षाओं में बैठने में भी कम ही रूचि लेते हैं। ऐसे में उनका सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार का ही प्रशिक्षण नहीं हो पाता है। जिनके पास सामान्य ज्ञान की समझ एवं व्यावहारिक जानकारी है उनको किसी समस्या का सामना नहीं करना पड़ता है।

प्रिंट मीडिया के क्षेत्र में कुछ समाचारपत्र युवाओं के नाम पर हिंग्लिश का प्रयोग कर रहे हैं। वहीं कुछ पत्र परंपरागत भाषा शैली पर ही कायम हैं। क्या आप पत्रकारिता के क्षेत्र मे एक आदर्श भाषा की आवश्कता समझते हैं?

कुछ समाचार पत्र मिली–जुली भाषा का प्रयोग कर रहे हैं ज्यादातर अंग्रेजी शब्दों को परोस रहे हैं। वे जैसी भाषा परोसते हैं वैसे ही अश्लील चित्रों को भी प्रकाशित करते हैं। लेकिन आपने देखा होगा ऐसे समाचारपत्रों की समाज में स्वीकार्यता बेहद कम है। वही जिन समाचारपत्रों ने अपने टेबलॉयड संस्करण में भाषा का ध्यान रखा है उनकी प्रसार संख्या मुख्य संस्करणों से भी अधिक है। कई समाचार पत्रों के टेबलॉयड संस्करण ने तो उनके मुख्य पत्र से भी अधिक लोकप्रियता पाई है। लेकिन उन्होंने भाषा को लेकर भी संयम बरता है।

सभी समाचार संस्थानों में नीति निर्धारक होते हैं जो यह तय करते हैं कि क्या प्रस्तुत करना है और क्या नहीं। क्या आप मीडिया में समान आचार संहिता की आवश्यकता महसूस करते हैं?

मीडिया के क्षेत्र में कार्यरत सभी संस्थान अपने लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं तथा उसके अनुसार ही अपनी संपादकीय नीति तय करते हैं। वे अपने निश्चित दृष्टिकोण के तहत कार्य करते हैं किंतु, दृष्टिकोण में चूक होने से संस्थान मर भी जाते हैं। लेकिन समान नियम लागू करना आपातकाल जैसी स्थिति होगी। सामाजिक और आर्थिक दबाव स्वयं ही मीडिया का नियमन करते हैं।

वर्तमान समय में मीडिया में कुछ भी दिखाने–परोसने का प्रचलन बढ़ गया है। क्या आपको मीडिया पर अंकुश लगाने या दिशानिर्देश जारी करने की आवश्यकता जान पड़ती है?

हम जिसे सरकार कहते हैं उसके द्वारा लिए गए निर्णय हमें सामूहिक जान पड़ते हैं लेकिन ऐसा नहीं है। सरकार में सभी मंत्री एवं विभागाध्यक्ष अपने आप में एक इकाई हैं। ऐसे में कई बार सरकार में शामिल व्यक्ति को भी सरकार के निर्णयों की जानकारी नहीं होती जिसे मीडिया ही उनतक पहुंचाता है। जनता दल सरकार के समय की एक घटना का स्मरण आता है, जब वीपी सिंह प्रधानमंत्री थे। वीपी सिंह के करीबी माने जाने वाले एक कैबिनेट मंत्री के यहां हम बैठे थे। उस समय भारत में समाचार चैनलों की शुरूआत हुई थी। उसी दौरान दूरदर्शन पर समाचार आया कि प्रधानमंत्री ने अमुक को कैबिनेट मंत्री की शपथ दिलाई जो उनके लिए भी नया था। आज मीडिया जो है किस मंत्री के यहां क्या हो रहा है इसकी जानकारी देता है। ऐसे में अंकुश लगाना उचित नहीं है।

मीडिया किसी विशेष मुददे को कई बार बहुत अधिक हाईप देता है जैसे अन्ना हजारे का आंदोलन, लेकिन कुछ समय बाद मीडिया ही अन्ना व रामदेव को हीरो से जीरो बना देता है। इस पर आपके क्या विचार हैं?

यह तो ठीक ही है। मीडिया को जब किसी के बारे में सकारात्मक तथ्य मिले तो उसे प्रस्तुत किया और जब नकारात्मक तथ्य मिले तो उसे भी प्रस्तुत किया। कुछ भी छिपाया नहीं, एक ही बात पर टिका रहना मीडिया के लिए सही नहीं है। मीडिया को जो तथ्य प्राप्त हों उन्हें ही प्रस्तुत करना चाहिए।

पत्रकारिता के पाठ्यक्रम में किस प्रकार का बदलाव चाहते हैं ?

ओशो ने कहा है कि आधुनिक पत्रकारिता का जन्म पश्चिम में हुआ है। वह सिर के बल खड़ी है उसे सीधा खड़ा करना होगा। उसमें मानवता नहीं है उसमें मानवता लाने के लिए भारतीय चिंतन और भारतीय दर्शन सम्मिलित करने की आवश्यकता है। पश्चिम की पत्रकारिता में नकारात्मकता अधिक है जिससे वे स्वयं परेशान हैं। अमेरिका में पूर्व राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन को भूलने की बीमारी हो गई थी जिसे समाचार पत्रों में अल्जाइमर के नाम से प्रकाशित किया गया। तबसे वहां कोई कुछ भूल जाता तो अल्जाइमर टेस्ट कराने के लिए चिकित्सक के पास जाता। नकारात्मक समाचारों को अधिक प्रकाशित–प्रसारित करके नकारात्मक माहौल तैयार किया जाता है। यह सही नहीं है। इसलिये मीडिया में सकारात्मक भारतीय दृष्टि की आवश्यकता है।

प्रिंट एवं इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में कौन बेहतर ढंग से उद्देश्यपरक पत्रकारिता कर पा रहा है ?

इलैक्ट्रॉनिक मीडिया सूचना को जल्दी पहुंचाता है। लेकिन प्रिंट मीडिया में स्थायित्व है। प्रिंट मीडिया का प्रशासन एवं जनता पर भी प्रभाव है। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया की पहुंच आज भी बिजली की कमी के कारण दूर–दराज के क्षेत्रों तक नहीं है। जबकि प्रिंट मीडिया की पहुंच जन–जन

तक है। मीडिया के जितने भी संस्करण आए उनका महानगरों में तो प्रभाव है किंतु, ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं है। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया की अपनी तकनीकी समस्याएं हैं।

न्यूमीडिया वैकल्पिक मीडिया के रूप में अपना स्थान बना रहा है। आप इसे किस प्रकार देखते हैं ?

जब हम पढ़ते थे तब विचार करते थे कि मीडिया मास का हो गया है। जिसे न्यू मीडिया ने व्यक्ति तक पहुंचा दिया है। इंटरनेट आने के पश्चात व्यक्ति अपने विचार एवं चिंतन को दुनिया भर में पहुंचा कर मीडिया में अपना स्थान बना सकता है। इस बदलाव के कारण दुनिया के 6 अरब लोग मीडिया में अपना स्थान बना सकते हैं। न्यू मीडिया ने परंपरागत मीडिया के एकाधिकार को भी तोड़ा है। परंपरागत मीडिया पर प्रकाशित समाचार की न्यू मीडिया के माध्यम से पुष्टि की जा सकती है अथवा उचित जानकारी पाई जा सकती है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में आपका कोई रोचक अनुभव ?

जब मैं हिंदुस्थान समाचार के लिए रिपोर्टिंग कर रहा था। तब मैं एक समाचार भेजने बीएचयू टेलीफोन एक्सचेंज गया था। उस समय वहां अयोध्या से एक टेलीग्राम आनंद मार्ग आश्रम के नाम आया जिसमें लिखा था 'कम सून अयोध्या, नेताजी सुभाष चंद्र बोस डेड'। इस समाचार को हमने अपनी एजेंसी में चलाया, स्टोरी भी बनी। इस पर जांच समिति भी बनी। जिन बाबा ने वह टेलीग्राम भेजा था उनसे पूछताछ हुई और रिपोर्ट भी बनी। इस प्रकरण को 'आज' दैनिक ने प्रमुखता से छापा था।

मीडिया में आने वाले नए पत्रकारों के लिए आपकी ओर से क्या संदेश है?

नए आने वाले पत्रकारों के लिए मेरा संदेश है कि वे आत्म–मूल्यांकन करना सीखें। आजीविका के लिए पैसा जरूरी है लेकिन आत्ममूल्यांकन भी आवश्यक है। किसी माध्यम से पहुंचने को सफलता नहीं कहा जा सकता है। आवश्यक है कि अपनी योग्यताओं के माध्यम से आगे बढ़ा जाए। ■

मीडिया के काले चेहरे को उजागर करती एक पुस्तक

पेड न्यूज– मीडिया का काला चेहरा
लेखक– संजीव पांडेय
प्रकाशक– संवाद मीडिया प्रा. लि.,ए–29, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली
मूल्य– 250 रूपए

पेड न्यूज अब कोई न्यूज नहीं रह गया है। खबर पुरानी हो चुकी है और इसलिए इस पर पुस्तक लिखा जाना तर्कसम्मत है। संजीव पांडे ने इस पर पुस्तक लिख कर पेड न्यूज के अस्तित्व पर अंतिम मुहर लगा दी है। इसमें दोष उनका नहीं है। जो चीज प्रचलन में आएगी और समाज को प्रभावित करेगी, उसकी टीका भी की ही जाएगी। यही प्रयास संजीव पांडे ने भी किया है अपनी पुस्तक पेड न्यूज में। किसी को यह थोड़ा अजीब लग सकता है कि एक तात्कालिक बुराई को इतनी मान्यता क्यों दी जाए, परंतु सच तो यह है कि यह तात्कालिक बुराई अब न तो तात्कालिक ही रह गई है और न ही बुराई। अब यह बन गई आज के मीडिया का एक अनिवार्य हिस्सा, जिसमें बाजार का सब कुछ बिकता है और हर कोई बिकाऊ है का सुनिश्चित जुमला चलता है।

2009 के आम चुनावों के बाद मीडिया के इस काली हकीकत की तरफ लोगों का सबसे ज्यादा ध्यान गया है। लेकिन सच यह है कि इससे पहले भी मीडिया और पत्रकारों के एक वर्ग को ऐसा करने में कोई दिक्कत नहीं थी। लेकिन यह भी सच है कि तब लोकलाज और मूल्यों का दबाव इतना था कि ऐसा करने वाले पत्रकार दबे–छिपे ही ऐसा करते थे। लेकिन 2009 के आमचुनावों के बाद इसे सार्वजनिक तौर पर अखबारों ने ही नहीं, टेलीविजन चैनलों तक ने स्वीकार कर लिया। 2009 आम चुनावों के बाद पेड न्यूज पर स्व. प्रभाष जोशी आदि पत्रकारों ने इस पर जो मुहिम चलाई, उसके कारण ऐसा लगा कि 2012 के पांच राज्यों के चुनावों में पेड न्यूज थम गया था। परंतु यह आधा सच था। रिपोर्टों के मुताबिक, चुनाव आयोग को अकेले पंजाब में पेड न्यूज की लगभग 523 शिकायतें मिलीं जिनमें से 339 मामलों में आयोग ने उम्मीदवारों को नोटिस जारी किया। इसके जवाब में 201 उम्मीदवारों ने स्वीकार किया कि उन्होंने खबरों के लिए पैसे दिए और वे उसे अपने चुनाव खर्च में जोड़ेंगे। अन्य 78 उम्मीदवारों ने इन आरोपों को नकारा जबकि 38 मामलों में उम्मीदवारों या संबंधित मीडिया संस्थान ने आरोपों को चुनौती दी। अन्य राज्यों में भी कमोबेश यही स्थिति थी।

संजीव पांडे ने प्रस्तुत पुस्तक में पृष्ठ दर पृष्ठ पेड न्यूज जिसे कि वे मीडिया का काला चेहरा कहते हैं, की सूक्ष्म व्याख्या की है और विभिन्न घटनाओं के उदाहरणों से उसे स्पष्ट किया है। पुस्तक में पेड न्यूज के कई प्रमुख उदाहरण और उससे जुड़ी जानकारियां दी गई हैं। इस पुस्तक की एक बड़ी उपलब्धि है पेड न्यूज के बारे में स्व. प्रभाष जोशी, राम बहादुर राय, पी साईंनाथ और प्रांजय गुहा ठकुराता जैसे वरिष्ठ पत्रकारों के विचारों और पेड न्यूज के विरूद्ध उनके प्रयासों को समाहित करना। पत्रकारिता और समाज से सरोकार रखने वाली पीढ़ी का इन्हें जानना जरूरी है। पांडे स्वयं भी पेड न्यूज के खिलाफ अभियान के साथी रहे हैं और उन्होंने इस काले चेहरे और उसको समाप्त करने की मुहिम दोनों को बड़े नजदीक से देखा है। इस विषय पर कलम चलाने के लिए वे अधिकारी व्यक्ति हैं। यह इस पुस्तक को पढ़ने से साफ होता है। कुल मिला कर कहा जा सकता है कि प्रस्तुत पुस्तक पेड न्यूज पर न केवल अच्छी जानकारी उपलब्ध कराती है, बल्कि उसके विरूद्ध चल रहे प्रबुद्ध पत्रकारों के प्रयासों से भी अवगत कराती है और साथ ही पाठकों को पेड न्यूज से मीडिया को मुक्त करने के प्रयास में शामिल होने का आह्वान भी करती है।

काम भी करो और पैसे भी दो

नेहा जैन

मीडिया पर आज बाजारवाद के प्रभाव में आने के आरोप लगाए जाते है। मीडिया संस्थाएं के मालिक पैसा कमाने की दौड़ में हद से आगे बढ़ते नजर आ रहे हैं और मीडिया मूल्यों को पीछे छोड़ते जा रहे हैं। किन्तु पत्रकार को उसी मिशन की कमान संभालने वाला माना जाता है और इसी मिशन के नाम पर उसका जमकर शोषण किया जाता है। वहीं बात इंटर्नशिप की करें तो आज मीडिया उनका शोषण करने वालों में अग्रणी पेशा बन गया है।

हालही में जानकारी मिली कि एक बड़े चैनल ने 3 महीने की इंटर्नशिप के लिए हजारों रूपये मांगे है। इसी प्रकार अन्य मीडिया संस्थान भी इस दिशा में आगे बढ़ते जा रहे हैं। दूरदर्शन और आकाशवाणी के बारे में तो सभी को ज्ञात है कि दूरदर्शन में इंटर्नशिप के लिए 2000 रूपये और आकाशवाणी में 1500 रूपये लिए जाते हैं। किंतु यह किस्सा यहीं खत्म नहीं हो जाता। आकाशवाणी और दूरदर्शन में इंटर्नशिप करने के इच्छुक छात्रों को कई महीनों तक अपनी बारी आने का इंतजार भी करना पड़ता है या फिर कुछ छात्रों को वहां भी किसी बड़े अधिकारी से संपर्क की जरूरत होती है। जबकि दूसरे क्षेत्रों की बात करें तो वहां स्थिति पत्रकारिता से बेहतर है। इंजीनियरिंग के छात्रों को इंटर्नशिप के बजाय सीधे नौकरी मिलती है और कुछ समय तक उन्हें कंपनी की तरफ से ट्रेनिंग के दौरान पैकेज का कुछ प्रतिशत दिया जाता है। आखिर पत्रकारिता की पढ़ाई करने वाले छात्रों को क्यों कई महीनों या कभी–कभी वर्षों तक इंटर्नशिप करनी पड़ती है? इस बात की गहराई तक जाके देखें तो खोट पत्रकारिता पढ़ाने वाले संस्थानों में ही मिलेगा। आज पत्रकारिता की पढ़ाई केवल खानापूर्ति के लिए ही रह गई है। कई अध्यापकों का तो पत्रकारिता से दूर तक का नाता नहीं है, किन्तु वह भी पत्रकारिता पढ़ा रहे हैं। उदाहरण के तौर पर एक विश्वविद्यालय की फोटोग्राफी की अध्यापिका क्लास के दौरान कैमरा चलाना सिखा रही थी, किन्तु उनसे कैमरा ऑन तक नहीं हुआ। थक–हारकर उन्होंने कैमरा लैब अटैंडैंट से ऑन कराया और फोटो भी उन्हीं से खिंचवाई। स्थिति यह है कि पत्रकारिता का कोर्स करने वाले छात्र हजारों–लाखों रूपये खर्चकर भी एकदम शून्य होकर पत्रकारिता में कदम रख रहे हैं जहां उन्हें इंटर्नशिप की आवश्यकता पड़ती है।

प्रशिक्षुओं का केवल आर्थिक रूप से ही नहीं बल्कि मानसिक रूप से भी शोषण किया जाता है। इसके अलावा शारीरिक शोषण के किस्से भी आम होते जा रहे हैं। उल्लेखनीय है कि आज पत्रकारिता में भी करियर तलाशा जा रहा है। बड़े–बड़े मीडिया संस्थान खुद इसे करियर बताकर युवाओं को पत्रकारिता में दाखिला लेने के लिए प्रेरित करते हैं। अब जाहिर सी बात है कि यदि कोई छात्र करियर के तौर पर पत्रकारिता में आएगा तो उसकी अपेक्षाएं भी होंगी, किन्तु पत्रकारिता में आने के बाद उसे निराशा ही हाथ लगती है। पत्रकारिता की पढ़ाई के बाद जब वह इस क्षेत्र में आता है तो वहां से उसका शोषण शुरू होता है। अनुभव न होने के अभाव में उसे इंटर्नशिप करनी पड़ती है और वहां अनुभव होने के बाद भी उसका शोषण निरंतर होता रहता है। कई बड़े चैनलों और अखबारों में तो प्रशिक्षुओं से चपरासी वाला काम कराया जाता है जिससे उसके मनोबल में गिरावट आती है। वहीं जब काम सिखाने की बात आती है तो इन्हीं मीडिया संस्थानों के कुछ लोग नांक–मुंह सिकोड़ने लगते हैं। इंटर्नशिप कर रही लड़कियों के लिए तो स्थिति और भी भयावह है। कुछ मीडिया मालिक उन्हें नौकरी का लालच देकर उनका शारीरिक शोषण भी करना चाहते हैं। हाल ही में आई एक खबर में जानकारी मिली थी कि समाचार चैनलों में छोटे कपड़ों में योगाभ्यास करती लड़कियां प्रशिक्षु हैं। वहीं एक समाचार चैनल ने तो सारी सीमा पार करके वहां काम करने वाले कर्मचारियों को भी नहीं छोड़ा। मालिक ने फरमान दिया कि नाट्य रूपांतरण के लिए चैनल में कार्यरत किसी भी व्यक्ति को लिया जा सकता है और मना करने वालों की नौकरी खतरे में पड़ जाएगी। नतीजा यह हुआ कि अपराध, चोरी, बलात्कार जैसी खबरों में इनको मन मारकर कार्य करना पड़ा।

कुछ समाचार चैनल व समाचार–पत्र तो ऐसे हैं जो केवल प्रशिक्षुओं के दम पर ही चल रहे हैं। एक समाचार चैनल ने तो कई महीनों तक अपने यहां कार्यरत पत्रकारों को वेतन ही नहीं दिया और ज्यादा से ज्यादा प्रशिक्षुओं को भर्ती कर लिया। यह चैनल इन प्रशिक्षुओं को देर रात तक कार्य करने के लिए भी बाध्य करते हैं।

सिटिजन जर्नलिस्ट के नाम पर भी मीडिया संस्थानों द्वारा लूट–खसोट का धंधा चल रहा है। कई मीडिया संस्थान ऐसे हैं जो निर्धारित राशि लेकर मीडिया किट देते हैं। यह राशि 5 हजार तक हो सकती है। इस मीडिया किट में एक प्रेस कार्ड, एक नोट पैड और एक पेन दिया जाता है जिसकी एवज में उनसे समाचार भी मंगाए जाते हैं। इसके लिए भी सबसे ज्यादा कॉलेज के विद्यार्थियों से संपर्क किया जाता है।

आखिर दुनियाभर में हो रहे शोषण के खिलाफ आवाज उठाने वाली पत्रकारिता आज पत्रकारों के शोषण पर क्यों चुप है? यहां यह भी गौर करने वाली बात है कि मीडिया की ताकत इतनी बड़ी है कि यदि सरकार पत्रकारों के शोषण को रोकने के लिए उपाय करती है तो मीडिया मालिक उसे होने नहीं देते। इसका उदाहरण हालही में आया मजीठिया वेज बोर्ड है। सरकार ने इसी तरह के पहले भी कई वेज बोर्ड प्रस्तुत किए हैं किन्तु वह सब ठंडे बस्ते में चले गए हैं। यदि पत्रकारों की स्वयं की स्थिति ही मजबूत नहीं होगी तो वह दूसरों के लिए कब तक लड़ेगा। पत्रकारिता में हो रहे शोषण के कारण ही कई पत्रकारों ने दूसरे पेशों की ओर रूख कर लिया है। इस स्थिति को तुरंत सुधारे जाने की आवश्यकता है अन्यथा लोकतंत्र का चौथा स्तंभ शोषित हो लड़खड़ाकर गिर पड़ेगा। ■

पत्रकार प्रेमचंद

सूर्यप्रकाश

मुंशी प्रेमचंद की कहानियों ने भारत की समस्याओं को उकेरा था। आम भारतीय के दर्द के मर्म को समझाने का प्रयास किया था। प्रेमचंद ने छूआछूत, सांप्रदायिकता एवं किसानों की बदहाल स्थिति के बारे में लोगों को समझाने का काम किया था। क्या उन्होंने इन मुद्दों को साहित्य के माध्यम से ही उठाया था? प्रायः हमारे मन में कहानीकार प्रेमचंद के लिए ही स्थान बनता है। पत्रकार प्रेमचंद के लिए नहीं। शायद प्रेमचंद की पत्रकारिता के पहलू हमारे सामने नहीं आ पाए हैं। यही कारण है कि हम उनको पत्रकार के रूप में जान–समझ भी नहीं पाए।

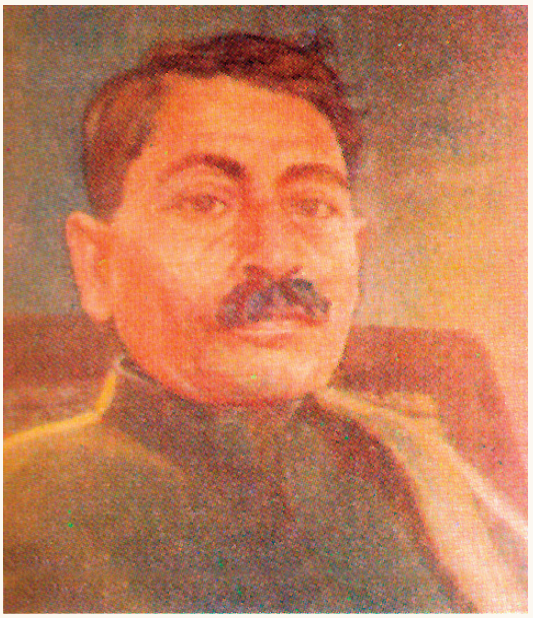

प्रेमचंद की मृत्यु 1936 में हुई थी, किंतु आजादी के सात दशक बीतने के बाद भी प्रेमचंद ने जिन समस्याओं के प्रति हमारा ध्यान आकृष्ट किया था वे समस्याएं आज भी यथावत जान पड़ती हैं। ऐसे समय में प्रेमचंद का स्मरण और भी प्रासंगिक हो जाता है। उन्होंने स्वदेश की जिन समस्याओं पर उपन्यास एवं कहानियां लिखीं थीं, उन्हीं मुददों पर उन्होंने पत्रकार की हैसियत से भी कलम चलाई थी। प्रेमचंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को पूर्णतया समझने के लिए उनकी पत्रकारिता के बारे में जानना भी आवश्यक प्रतीत होता है।

मुंशी जी ने 'हंस', 'माधुरी' और 'जागरण' का संपादन कर राष्ट्रचेतना से संबंधित अपने विचारों को जन–जन तक पहुंचाने का कार्य किया। सामाजिक समरसता एवं स्वदेशी के भाव को उन्होंने पत्रकारिता के माध्यम से लोगों को समझाने का कार्य किया। साहित्य की तुलना में पत्रकारिता आम आदमी की समस्याओं को अधिक स्फूर्त रूप से समझा सकती है, संभवतः यही कारण था कि प्रेमचंद ने साहित्य सर्जन के साथ ही पत्रकारिता के माध्यम से भी जनजागरण की ज्योति प्रचण्ड की।

मुंशी प्रेमचंद ने अपने निजी जीवन में जिन झंझावतों को झेला एवं महसूस किया था, वह संवेदनाएं उनके लेखन में भी दिखाई पड़ती हैं। प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई, 1880 को वाराणसी के निकट लमही गांव में हुआ था। माता का नाम आनंदी देवी एवं पिता मुंशी अजायबराय डाकमुंशी थे। 7 वर्ष की अवस्था में मां एवं 14 वर्ष की आयु में पिता उन्हें कभी पूरी न होने वाली कमी देकर चले गए। उनका विवाह पंद्रह वर्ष की अपरिपक्व आयु में हुआ जो सफल साबित नहीं हुआ। वे विधवा विवाह के समर्थक थे जिसे उन्होंने बाल विधवा शिवरानी देवी से विवाह कर साबित भी किया। जीवनयापन के लिए उन्होंने मैट्रिक पास होने के बाद अध्यापन भी किया। गोरखपुर, कानपुर, बनारस आदि में रहकर उन्होंने अध्यापन किया।

वाराणसी के महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ में अध्यापन का अवसर भी उन्हें प्राप्त हुआ। प्रेमचंद ने औसत विद्यार्थी एवं औसत गरीब अध्यापक दोनों के ही जीवन को जिया था। अपने विद्यार्थी जीवन के अभावपूर्ण जीवन की एक घटना का वर्णन उन्होंने इन मार्मिक शब्दों में किया–

''जाड़ों के दिन थे। पास एक कौड़ी न थी। दो दिन एक–एक पैसे का खाकर काटे थे। मेरे महाजन ने उधार देने से इंकार कर दिया था। संकोचवश मैं उससे मांग न सका था। चिराग जल चुके थे। मैं एक बुकसेलर की दुकान पर एक किताब बेचने गया। एक चक्रवर्ती–गणित–कुंजी दो साल हुए खरीदी थी, अब तक उसे बड़े जतन से रखे हुए था पर चारों ओर से निराश होकर मैंने उसे बेचने का निश्चय किया। किताब दो रूपये की थी, लेकिन एक रूपये पर सौदा ठीक हुआ।'' (जीवन सार)

विद्यार्थी जीवन में उन्होंने स्वयं अभावों को सहा था। इसलिए वे विद्यार्थियों की समस्याओं से सदैव सरोकार रखते थे। विद्यार्थी उनसे विशेष स्नेह रखते थे, उनकी सादगी विद्यार्थियों के लिए प्रेरणा का कार्य करती थी।

अध्यापकी के दौरान ही उन्होंने पत्रकारिता एवं साहित्य साधना का कार्य आरंभ कर दिया था। अध्यापन तो उनकी तत्काल की आर्थिक समस्याओं से निजात दिलाने का एक माध्यम भर था। उनका ध्येय तो साहित्य एवं पत्रकारिता ही थी। सन 1905 में 'जमाना' में भेजे लेख से उन्होंने पत्रकारिता की शुरूआत की थी। 'जमाना' उर्दू पत्र था। जल्द ही प्रेमचंद ने हिंदी की ओर रूख किया और 'माधुरी' एवं 'हंस' का संपादन किया। सन् 1930 के दौरान वे 'माधुरी' का संपादन करते थे। 'माधुरी' के माध्यम से उन्होंने हिंदी भाषा की अपूर्व सेवा की। किंतु, 'माधुरी' पत्रिका में वह विषय समाहित न हो सके थे जो उसे हिंदी की राष्ट्रीय पत्रिका के रूप में पहचान दिला सके।

ऐसे वक्त में प्रेमचंद को ऐसी पत्रिका की आवश्यकता महसूस हुई जो राष्ट्रवादी आंदोलनों के विचारों का प्रतिनिधित्व एवं जनमत निर्माण कर सके। सन् 1930 में अवज्ञा आंदोलन के दौरान ही उन्होंने 'हंस' का प्रकाशन प्रारंभ कर दिया था। 'हंस' पत्रिका उनके लंबे विचार मंथन का परिणाम थी। इस प्रकार 'हंस' की शुरूआत ही स्वाधीनता आंदोलनों के लिए जनमत निर्माण के उद्देश्य से हुई थी। यही कारण था कि 'हंस' को अंग्रेजी सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा। लेकिन प्रेमचंद ने 'हंस' की लड़ाई बड़ी बहादुरी के साथ लड़ी। लेखक जैनेन्द्र को लिखे पत्र में उन्होंने बताया–

''हंस' पर जमानत लगी। मैंने समझा था आर्डिनेंस के साथ जमानत भी समाप्त हो जाएगी। पर नया आर्डिनेंस गया और जमानत भी बहाल कर दी गई। जून और जुलाई का अंक हमने शुरू कर दिया है, पर जब मैनेजर साहब अपना नया डिक्लेरेशन देने गए तो मजिस्ट्रेट ने पत्र जारी करने की आज्ञा न दी, जमानत मांगी। अब मैंने गवर्नमेंट को स्टेटमेंट लिखकर भेजा है। अगर जमानत उठ गई तो पत्रिका तुरंत ही निकल जाएगी। छप, कट, सिलकर तैयार रखी है। अगर आज्ञा न दी तो समस्या टेढ़ी हो जाएगी। मेरे पास न रूपया है, न प्रोमेसरी नोट, न सिक्योरिटी। किसी से कर्ज लेना नहीं चाहता। यह शुरू साल है, चार–पांच सौ वी. पी जाते, कुछ रूपये हाथ आते। लेकिन वह नहीं होना है।'' (प्रेमचंद–स्मृति अंक, 'हंस', मई 1937)

प्रेमचंद ने 'हंस' को स्वाधीनता आंदोलन की वैचारिक पत्रिका के रूप में स्थापित किया था। 'हंस' के सिलसिले को अनवरत बनाए रखने के लिए वे सदैव प्रयासरत रहे। सन 1936 में 'हंस' से फिर जमानत मांगी गई। उस दौरान 'हंस' हिंदी–साहित्य परिषद की देखरेख में निकलता था। परिषद ने जमानत देने के बदले पत्र को बंद कर देना ही उचित समझा। लेकिन प्रेमचंद को यह गवारा नहीं था कि 'हंस' बंद हो। उन्होंने बीमारी की हालत में भी जमानत देने का प्रबंध कराया और पत्र को जिंदा रखा।

आर्थिक कठिनाई के दौरान प्रेमचंद ने 'हंस' साहित्य परिषद को दे दिया था। किंतु, साहित्य परिषद ने उसे पचास रूपये की बचत के लिए सस्ता साहित्य मंडल को दे दिया। इससे प्रेमचंद को बहुत पीड़ा हुई थी। एक मित्र को लिखे पत्र में उन्होंने अपने दर्द को बयां करते हुए लिखा था–

''बनियों के साथ काम करके यह सिला मिला कि तुमने 'हंस' में ज्यादा रूपया खर्च कर दिया। इसके लिए मैंने दिलोजान से काम किया। बिलकुल अकेले अपने वक्त और सेहत का कितना खून किया, इसका किसी ने लिहाज न किया।'' (जीवन और कृतित्व में उदधृत)

प्रेमचंद ने साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम से हिंदी की अपूर्व सेवा की थी। वे अपने लेखन के लिए क्या मिलेगा इसकी परवाह न करते थे। लिखना उनका धर्म था, शब्दों के वे पुजारी थे। यही कारण था कि उन्होंने धन के लिए लिखा ही नहीं। कई बार उन्हें अपेक्षाकृत मिला ही नहीं। किंतु, वे अहोरात्र लिखते रहे। हालांकि हिंदी लेखकों की आर्थिक समस्याएं उन्हें बहुत अधिक कचोटती थीं, किंतु वे पैसे न मिले इसलिए लेखन न हो इसे उचित नहीं समझते थे। हिंदी लेखकों की आर्थिक कठिनाई के विषय में उन्होंने कहा–

''हिंदी में आज हमें न पैसे मिलते हैं, न यश मिलता है। दोनों ही नहीं। इस संसार में लेखक को चाहिए किसी भी कामना के बिना लिखता रहे।''

वे आजीवन हिंदी की सेवा करते रहे। बीमार होने पर भी उनकी कलम नहीं रूकी। अनवरत चलती रही। हंस का प्रकाशन बंद नहीं हुआ। यह सब प्रेमचंद के पत्रकारिता और साहित्य प्रेम का परिणाम था। वे अपनी मृत्यु से पूर्व लंबे समय तक बीमार रहे। अंततः उन्होंने 8 अक्टूबर, 1936 को शरीर त्याग दिया। साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम से हिंदी की सेवा करने वाले प्रेमचंद का लेखन आज भी उनकी मौजूदगी का एहसास कराता है।

■

दो भागों में बंटेगा न्यूज कॉर्प

मीडिया कंपनी न्यूज कॉर्प ने अपने प्रकाशन और मनोरंजन कारोबार को दो अलग संस्थाओं में विभाजित करने का फैसला लिया है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार न्यूज कॉर्प के प्रकाशन कारोबार के अंतर्गत अमेरिका, लंदन व ऑस्ट्रेलिया में स्थित समाचार–पत्र एवं सूचना कारोबार, पुस्तक प्रकाशन ब्रांड, एकीकृत विपणन सेवाएं, डिजिटल शिक्षा समूह व ऑस्ट्रेलिया स्थित अन्य सम्पत्तियों को सम्मिलित किया जाएगा। वहीं दूसरी ओर वैश्विक मीडिया व मनोरंजन कारोबार में प्रसारण व विश्वभर में फैले केबल नेटवर्क, फिल्म एवं टेलीविजन प्रोडक्शन स्टूडियो, टेलीविजन स्टेशन और यूरोप व भारत में स्थित टेलीविजन कारोबार सम्मिलित होंगे।

विभाजन के संबंध में न्यूज कॉर्प के अध्यक्ष व सीईओ रूपर्ट मर्डोक का कहना है कि ''इस नई संरचना से न्यूज कॉर्प नई ऊंचाईयों को तेजी से छुएगा और इसकी प्रत्येक संस्था अपनी पूरी क्षमता को पहचान पाएगी। इसके साथ ही प्रत्येक संस्था का संचालन भी आसान होगा और हमारे विश्वभर में फैले उपभोक्ताओं को बेहतर सेवाएं मिलेंगी।'' बताते चलें कि विभाजन के बाद मर्डोक दोनों कंपनियों के अध्यक्ष व वैश्विक मीडिया एवं मनोरंजन कारोबार के सीईओ रहेंगे।

उल्लेखनीय है कि न्यूज कॉर्प स्टार चैनल, वॉल स्ट्रीट जर्नल, हार्परकॉलिन्स, द न्यू यॉर्क पोस्ट और टाइम्स ऑफ लंदन जैसे बड़े ब्रांडों का मालिक है। न्यूज कॉर्प हाल ही में एबीपी ग्रुप से भी अलग हो गया है जिसके तहत भारत में स्टार न्यूज समेत तीन न्यूज चैनल चलते थे।

सोशल मीडिया के लिए जरूरी होते साइबर कानून

वंदना शर्मा

इंटरनेट के जनक यानि विन्टन सर्फ ने इंटरनेट की शुरूआत केवल इसलिए की थी कि कुछ जरूरी सूचनाओं को दुनिया के अलग–अलग हिस्सों में बिना समय बर्बाद किए पहुंचाया जा सके। शुरूआती दौर में इंटरनेट का प्रयोग लेकिन उस साठ के दशक से आज इसके मायने पूरी तरह बदल गए हैं। इसके प्रयोग बदल गए हैं। इंटरनेट तब केवल एक शुरूआत भर थी और आज इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि केवल भारत में ही लगभग 16 करोड़ इंटरनेट यूजर हैं, जिनमें से 75 प्रतिशत सोशल मीडिया पर एक्टिव हैं।

जहां एक ओर, भारतीय सरकार सोशल नेटवर्किंग साइटों की नकेल कसने की जुगत भिड़ा रही है वहीं दूसरी ओर खुद सरकार इसमें अपने पैर पसार रही है। जब सरकार सोशल मीडिया पर सेंसरशिप की बात भी कर रही है वहीं खुद उसकी ताकत को समझकर उस पर आ रही है। हाल ही में पीएमओ ने ट्विटर और फेसबुक पर अपना पेज बनाया है। वहीं वीडियो शेयरिंग साइट यू–ट्यूब पर भी अपना चैनल खोला है। विदेश मंत्रालय भी अब सोशल मीडिया में अपने कदम रख चुका है। इसके साथ ही कई राज्यों के मुख्यमंत्री फेसबुक और सोशल नेटवर्किंग पर सक्रिय हैं। इसका स्पष्ट उदाहरण केरल के मुख्यमंत्री ओमन चंडी ने ही दे दिया है जो बेहद सराहनीय है। उन्होंने अपने दफ्तर में वेबकैमरे लगा दिए हैं जिसे मंत्रालय की आधिकारिक साइट पर 24 घंटे लाइव देखा जा सकता है।

अब इस सोशल मीडिया या न्यू मीडिया को लोकतंत्र का 'पांचवां खंभा' माना जा रहा है। जो लगातार प्रभावशाली बनता जा रहा है। हालांकि सोशल मीडिया के कुप्रभाव भी साफ तौर पर सामने आ रहे हैं।

देश में सोशल मीडिया को लेकर इन दिनों हलचल मची हुई है। सोशल मीडिया है क्या, ये बात अब सब जान ही चुके हैं। लेकिन इसके प्रभाव क्या पड़ रहे हैं और आगे क्या हो सकते हैं, इसका किसी को कोई अंदाजा हो, उससे पहले ही हर बार कुछ ऐसा उभरकर सामने आ जाता है कि यह पूरी तरह बदल जाता है।

सोशल नेटवर्किंग साइटों पर किसी का शिकंजा नहीं हो सकता जब तक इसके लिए कोई प्रभावी प्रावधान न तैयार किए जाएं। आज इंटरनेट पर मौजूद आपके पर्सनल डेटा की सुरक्षा की भी कोई गारंटी नहीं रह गई है। उस पर कभी भी किसी भी हैकर द्वारा सेंध लगाई जा सकती है। हैकरों की जमात इंटरनेट पर बढ़ने लगी है। पिछले दिनों एक हैकर ग्रुप ने यह बात कही है कि उसने याहू के लगभग साढ़े चार लाख खाते और उनके पासवर्ड की चोरी कर ली है। साथ ही आए दिन हैकर धमकियां भी देने लगे हैं।

सोशल मीडिया से जुड़े लगातार ऐसे मामले सामने आ रहे हैं जो कहीं न कहीं हम सभी के लिए खतरनाक साबित हो रहे हैं। जो हमें सजग हो जाने की चेतावनी दे रहे हैं। वीडियो शेयरिंग साइट यू–ट्यूब पर कोलकाता की ओलंपिक में तीन गोल्ड मेडल जीतने वाली एथलीट पिंकी प्रमाणिक के लिंग परीक्षण का वीडियो इस तरह लीक हो जाना एक घृणास्पद कार्य है। यदि इस तरह के वीडियो कंटेंट को साइट पर सोशल करने से पहले एक बार मॉनीटरिंग की जाने की व्यवस्था होती तो ऐसी फजीहत होने से बचा जा सकता था।

वहीं दूसरा किस्सा इसी हफ्ते हुई गुवाहाटी में नाबालिग लड़की के साथ हुई बदसलूकी के मामले में घटनास्थल पर पुलिस के होने के बावजूद आरोपियों द्वारा इसकी वीडियो बनाई गई। बाकायदा इसे वीडियो शेयरिंग साइट यू–ट्यूब पर अपलोड भी कर दिया गया। यह हम सभी के लिए बेहद शर्मनाक है कि किसी भी सामग्री को सेकेण्डों में इस तरह सार्वजनिक किया जा सकता है चाहे वह देशहित में हो या अहित में।

एक सर्वे के मुताबिक, केरल राज्य में सबसे ज्यादा अश्लील सामग्री पोस्ट की जाती है। एक सरकारी आकड़े के अनुसार इंटरनेट पर 496 ऐसे मामले आए, जिनमें से 136 मामले केरल के ही थे।

पिछले साल साइबर क्राइम के 245 मामले दर्ज हुए थे, जिनमें से 55 प्रतिशत मामले केरल से ही थे। देश का साइबर क्राइम जिस हिसाब से बढ़ रहा है वाकई चिंताजनक है। साल 2009 में 696 मामले सामने आए थे, 2011 में यह संख्या बढ़कर 2213 हो गयी।

ऐसे हालातों का समाना केवल भारत ही नहीं बल्कि अन्य देश भी कर रहे हैं। हाल ही में जेनेवा में हुई अद्भुद खोज यानि 'गॉड पार्टिकल' की खोज को दुनिया के सामने औपचारिक तौर पर सामने लाए जाने से पहले ही वह वीडियो भी लीक कर दिया गया था। हालांकि इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ सका लेकिन इसे सुरक्षा और निजता के लिए खतरे की घंटी मानी जा सकती है।

इससे पहले कि यह स्थिति और भयानक रूप ले ले हमें रोकना होगा और उपाय तैयार करने होंगे। स्पष्ट तौर पर कुछ साइबर कानून बनाए जाने चाहिए। साथ ही लोगों को भी इसके लिए पूरी जानकारी होनी चाहिए। ■

क्या यशवंत प्रकरण मीडिया के गिरते स्तर का परिचायक है?

यशवंत प्रकरण ने वेब मीडिया और मुख्यधारा की मीडिया को आमने–सामने लाकर खड़ा कर दिया है और एक नई बहस को जन्म दिया है। यशवंत पर लगे आरोपों की सत्यता–असत्यता पर चर्चा न करते हुए भी यह सवाल तो अपनी जगह पर पूरी तरह मौजूं है कि क्या मीडिया इतना गिर चुका है कि चाहे माध्यम नया हो या पुराना, इसमें पीला दाग रहेगा ही? क्या यशवंत प्रकरण मीडिया के गिरते स्तर का परिचायक है?

मुख्यधारा के मीडिया ने बड़ी चालाकी से संगठित होकर यशवंत पर प्रहार करके समूचे वेबमीडिया पर कुठाराघात किया है। समाचार–पत्रों की कतरनों में एकरूपता से यह स्पष्ट है। इस मामले में आवश्यक है कि वेबमीडिया से जुड़े लोग एक साथ कदम उठाएं।

संजीव कुमार सिन्हा

यह समय यशवंत के खिलाफ आग में घी डालने का नहीं, यशवंत के साथ खड़े होने का है। यशवंत को नैतिक समर्थन देने का है। कॉरपोरेट और पूंजीवादी पत्रकारिता के खिलाफ जिस ताकत से यशवंत आज की तारीख में खड़े हैं, प्रतिरोध की जो अलख वह भड़ास4मीडिया के मार्फत जगाए हुए हैं, वह सैल्यूटिंग है। इसको डायल्यूट नहीं होने देना चाहिए।

दयानंद पांडेय, वरिष्ठ पत्रकार

देखिये यशवंत जी के साथ जो भी हो रहा है उसके पीछे के षड्यंत्र को सब समझते हैं, लेकिन इसके इतर अगर बात सिर्फ पत्रकारों की करें तो ये साफ है कि आरोप तो लगेंगे ही चाहे आप कितने ईमानदार क्यों न हो। जहां तक पीत पत्रकारिता की बात है तो हमारे यहां ये तेजी से बढ़ रही है। पत्रकारों के बीच शामिल होती दलालों की भीड़ के कारण लोग सभी पत्रकारों को संदेह भरी निगाहों से देखने लगे हैं। लेकिन पत्रकारों के लिए ये स्थिति किसी खतरे की घंटी से कम नहीं है। जब तक दलालों और ब्लैकमेलरों को पत्रकारिता जैसे पेशे से बाहर का रास्ता नही दिखाया जाता तब तक पत्रकारिता पर इस तरह के दाग लगते ही रहेंगे। हाल इतना बुरा हो चुका है की बच–बच के चलने पर भी दाग लग रहे हैं। वैसे भी ''काजल की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय, एक लीक काजल की लगि है सो लागि है''

हिमांशु डबराल, आज समाज

हां, मेरे विचार से मीडिया की सहभागिता समाज में ज्यादा ही बढ़ गयी है। जैसा हम जानते हैं कि अति तो हर चीज की बुरी होती है। यही बात पत्रकारिता के ऊपर भी लागू होती है। यद्यपि ये बात सही है की अगर धुआं निकल रहा है तो आग अवश्य लगी होगी, परन्तु ऐसा आज के युग में कहना सही नहीं होगा। क्योंकि आज तो वर्चुअल धुआं वहां भी उत्पन्न किया जा सकता है, जहां आग की कोई संभावना ही नहीं होती। अतः मेरे विचार से यहां मुद्दा यशवंत जी के प्रकरण से ज्यादा पतन होते मानवीय गुणों का है। किसी जन सामान्य का विशेष बन जाना लोगो को सहन नहीं होता, इसलिए उस विशेष के पराभव का हर संभव प्रयास करना आरंभ कर देते हैं।

अंकिता, भास्कर ग्रुप

दाग अच्छे हैं! इन दागों से मीडिया के स्तर में सुधार होगा, जो जरुरी भी है। आज–कल की मीडिया का स्तर लगातार गिरता जा रहा है, इसलिए मीडिया की आलोचना होना जरुरी भी है। वैसे भी यशवंत सिंह पर ब्लैकमेलिंग के आरोप तो लगते आये हैं, और वो सही भी हैं। मेरे विचार से भड़ास4मीडिया के पोर्टल का लोगों के बीच में आकर्षण भी है जिसका यशवंत सिंह फायदा उठाते आये हैं।

अनुराग पाण्डेय, पीटीआई

मीडिया का स्तर आज गिरा जरूर है! परन्तु इसके लिए कहीं न कहीं आम आदमी भी जिम्मेदार है वरना ये वही मीडिया है जिसने हमें आजादी दिलाई थी। मीडिया पर आरोप लगाना एक आम बात है लेकिन वो आरोप किस के हित के लिए लग रहे हैं, ये गौर करने वाली बात है। यशवंत जी के साथ जो हुआ वो पूरा मीडिया जानता है उस को देखने से ये लग रहा है कि अब प्रिंट और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया की बुनियाद को वेब मीडिया ने हिला कर रख दिया है। आने वाला समय ये दिल खोल कर बोल रहा है कि मीडिया का स्तर गिर चुका है और आगे और बुरी हालत हो सकती है, क्योंकि आज के युग मे जो दिखता है वो ही बिकता है।

रोहन त्यागी, न्यूज ट्री

पत्रकारिता में "ब्लैकमेलिंग" की कोई जगह नहीं है। पीत पत्रकारिता का हक पत्रकारिता के जनक को भी नहीं दिया जा सकता। यशवंत सिंह पर जो आरोप हैं उनकी जांच चल रही है और अगर यह सच है तो सजा मिलनी चाहिए।

विकास, नव भारत टाइम्स

लोगों ने मीडिया के स्तर को गिराने की कोशिश तो की, लेकिन मीडिया का स्तर नहीं गिर सका। जहां तक यशवंत सिंह की बात है तो जब व्यक्ति ऊपर पहुंचने लगता है, तो लोग उस पर यकीन नहीं करते और उसे आरोपित करने लगते हैं। भड़ास4मीडिया पर हम देखते हैं कि वह न्यूज चैनल और समाचार पत्रों की पोल खोलते हैं या कहें कि सच्चाई से रूबरू कराते हैं, तो आज आलोचकों को मौका मिला है उन पर दाग लगाने का। अब यदि मीडिया प्रसिद्धि की बात करें तो मीडिया की प्रसिद्धि तो बनी रहेगी, लेकिन आज कल के लोग पढ़ना नहीं, सुनना और देखना चाहते हैं।

रजा कादिर, मुंसिफ टीवी

टीवी चैनलों का सत्यकथाकरण खबरों के प्रसारण संदर्भ में

शोधार्थी– प्रवीण कुमार झा, उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय

पत्रकारिता के संदर्भ में समाचार चैनलों के सत्यकथाकरण में खबरों के प्रसारण के संदर्भ में उसके वर्तमान के चरित्र, बदलाव और दृष्टिकोण का विश्लेषण एवं विवेचन ही इस शोध का मूल उद्देश्य है। समाचार चैनलों के स्वरूप, इतिहास, बदलाव के कारण और प्रभावों का अध्ययन और विवेचन इस शोध प्रबन्ध में किया गया है।

टीवी चैनलों का सत्यकथाकरण और खबरों के प्रसारण के संदर्भ में शोध के आरंभ में इस प्रश्न का हल ढूंढा गया कि समाचार चैनलों पर प्रसारित होने वाले समाचारों, कार्यक्रमों और तकनीकी स्तरों पर क्या बदलाव हुए हैं जिससे समाचार चैनल का सत्यकथाकरण हुआ। पहले जहां सिर्फ अपराध की खबरों से संबंधित कार्यक्रम ही सत्यकथाकरण की श्रेणी में थे वहीं आज समाचार चैनल का संपूर्ण चरित्र इस श्रेणी में आ गया है। खेल, मनोरंजन, ज्योतिष, अपराध, राजनीति आदि किसी प्रकार का समाचार हो, सभी का प्रस्तुतिकरण सनसनीखेज और मनोरंजक रूप में ही हो रहा है। यानि हम कह सकते है कि खबरों का मनोरंजनीकरण और मनोरंजन का खबरीकरण हो गया है।

समाचार चैनलों से जुड़े प्रमुख व्यक्तियों, समाचार पत्रों से जुड़े प्रमुख व्यक्तियों, मीडिया शिक्षण सें जुड़े लोग तथा मीडिया आलोचक, समीक्षक एवं मीडिया पर शोध कार्य करने वाली संस्थाएं सभी इस बात से सहमत है कि समाचार चैनल प्रयोग के दौर से गुजर रहे हैं और इसी प्रयोग में समाचार चैनल एक–दूसरे की नकल कर रहे हैं। जहां लोग समाचार चैनल में नयी तकनीक के आगमन को इसके विकास में बहुत बड़ा योगदान मानते हैं तो वहीं प्रतिस्पर्द्धा के दौर में टेलीविजन रेटिंग प्वांइट को लेकर मतभिन्नता है। प्रस्तुत शोध के अनुसार समाचार चैनलों के सत्यकथाकरण का सबसे बड़ा मुख्य कारक है– टेलीविजन रेटिंग प्वाइंट। दरअसल समाचार चैनलों के कार्यक्रम मापने का दूसरा कोई पैमाना भी नहीं है, और यह टीआरपी बाजारवाद पर आधारित है। एक दूसरे को पछाड़ने की आपाधापी के बीच जनता के मुद्दे गायब होते जा रहे हैं।

समाचार चैनल बढ़ते ही जा रहे हैं और इन चैनलों में समाचारों को लेकर हल्कापन साफ झलकता दिखायी देता है। टीवी चैनलों ने अपनी टीआरपी बढ़ाने के चक्कर में समाचारों की एक अलग दुनिया ही बना ली है। कभी समाचार चैनलों पर अंधविश्वास, भूत–प्रेत, चमत्कार का बोलबाला रहा है, तो कभी अपराध, खेल, ज्योतिष का। आज समाचार चैनलों पर मनोरंजन चैनलों के हल्के–फुल्के हास्य कार्यक्रमों और रियलिटी शो का बोलबाला है। आलम यह है कि इन टीआरपी वाले कार्यक्रमों को ही समाचार चैनलों पर तरजीह दी जाती है। इस बीच अगर समाचार चैनल कोई नया प्रयोग करते है तो वे औंधे मुंह गिर जाते हैं। 2011 के क्रिकेट के महाकुम्भ को ही देखा जाए तो सारे समाचार चैनल विश्वकपमय हो गए। अन्य समाचारों के लिए कोई जगह नहीं है। खासकर समाचार चैनलों में राजनीति, अंतर्राष्ट्रीय और सामाजिक सरोकारों से जुड़े विषय के समाचार तो हाशिए पर चले गए हैं। टीआरपी चार्ट में वो सभी कार्यक्रम जगह बना रहे हैं, जिनमें सनसनी, रोमांच, ड्रामा, चमत्कार, अंधविश्वास होता है। गंभीर समाचार कार्यक्रम तो औंधे मुंह गिर जाते हैं। सकारात्मक या विकास के समाचारों के समाचारों की जगह अपराध, सेक्स स्कैंडल आदि के समाचार प्रमुखता से दिये जा रहे हैं।

फैशन, जीवनशैली, अपराध, मनोरंजन, अंधविश्वास, आश्चर्य, चमत्कार, डर आज बड़ी खबर है जो तकनीक केवल मनोरंजन कार्यक्रमों में प्रयोग की जाती थी वह अब समाचार का हिस्सा बन गयी है। अब समाचार यथार्थ नहीं रह गया है, बल्कि चटपटा मसाला मिक्स कंटेट बन गया है, क्योंकि यही बिक रहा है। समाचार चैनलों के अंतर्गत कंटेंट को लेकर जो समस्याएं है, उन्हें सामान्यीकरण के चश्मे से नहीं देखा जा सकता है। यह हमेशा समय सापेक्ष रहा है और रहेगा। चौबीस घंटे के समाचार चैनलों से कुछ भी छिपा नहीं रह सकता है, क्योंकि कैमरा सभी जगह पहुंच रहा है और सभी को अपनी जिम्मेदारी का अहसास करा रहा है लेकिन मनोरंजन चैनलों से मुकाबला करने के लिए समाचार चैनलों ने समाचारों को मनोरंजन की चाशनी में लपेटकर प्रसारित करना आरंभ कर दिया है। समाचार पहले से अधिक रोचक बनाया जाने लगा है, जिसका सीधा असर उसके पैकेजिंग पर पड़ता है। यानि हम यह कह सकते हैं कि समाचार का मनोरंजनीकरण हो गया है। समाचार चैनलों में भाषा के प्रस्तुतिकरण को देखा जाए तो ज्यादातर हिंग्लिश का प्रयोग किया जाता है और भाषा के आधार पर तथ्यों को तोड़–मरोड़कर प्रस्तुत किया जाता है।

इस शोध में एक बात और सामने आयी कि समाचार चैनलों की संपादकीय नीति में उन सभी सावधानियों का उल्लेख हैं जिन्हें नहीं बरतने पर समाचार चैनलों को आलोचना का शिकार होना पड़ता है। इसमें अंधविश्वास, अश्लीलता, हिंसा, चमत्कार के समाचार शामिल हैं। आजकल इसमें एक नया अध्याय रियलिटी शो के समाचारों के जरूरत से ज्यादा प्रसारण का भी है। जिसके अंतर्गत सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने समय समय पर समाचार चैनलों को नोटिस भी दिया है। इनमें ज्यादातर समाचार जिन्हें लेकर आलोचनाओं का शिकार होना पड़ता हैं, वह महत्त्वपूर्ण दिशा निर्देश के पालन नहीं करने के कारण से हुआ है। यदि सूचना प्रसारण मंत्रालय थोड़ी और सख्ती बरते तो समाचार चैनलों को ऐसी गलतियां करने से रोका जा सकता है।

कुल मिलाकर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि टीवी चैनलों के सत्यकथाकरण खबरों के प्रसारण के संदर्भ में नयी तकनीक, प्रयोग के दौर में कार्यक्रमों को सनसनीखेज बनाना, प्रस्तुतिकरण, प्रतिस्पर्द्धा, बाजारवाद आदि कहीं न कहीं कमोवेश अपनी भूमिका निभा रहा है। इसमें समाचार पत्र–पत्रिकाओं का भी अहम योगदान है। साथ ही इसके लिए सरकारी नीतियां, दर्शक, पाठक, और श्रोता सभी जिम्मेदार है।

अतः शोधकर्ता का यह निष्कर्ष है कि आने वाला समय टीवी चैनलों के सत्यकथाकरण खबरों के प्रसारण के संदर्भ में टेलीविजन समाचार चैनलों के बदलते स्वरूप को एक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत के रूप में कारगर होगा और इसे टेलीविजन पत्रकारिता के नए विधा के रूप में मान्यता अवश्य मिलेगी। ■

1. **ए.बी.सी–** पत्र–पत्रिकाओं की प्रसार संख्या की जानकारी प्रदान करने वाली संस्था ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्क्यूलेशन। केन्द्र सरकार के सूचनाएं एवं प्रसारण मंत्रालय के अधीन।

2. **बीट–** समाचार संकलन के लिए रिपोर्टर का नियमित या प्रमुख कार्यक्षेत्र (यथा– संसद, विधानसभा, न्यायालय, विश्वविद्यालय, पुलिस कंट्रोल रूम)।

3. **हैंडआउट्स–** लिखित प्रचारात्मक साहित्य। सामान्यतः ये सरकारी विभागों, निजी एवं सरकारी प्रतिष्ठानों तथा अन्य संस्थानों द्वारा जारी किए जाते हैं।

4. **मेकअप–** समाचारपत्र का भौतिक स्वरूप तथा पत्र के पृष्ठ पर समाचारों, चित्रों आदि की सज्जा।

5. **स्पॉट न्यूज–** अप्रत्याशित समाचार। ऐसा समाचार जिसका पहले से कोई ज्ञान न हो।